जनसत्ता

पाबंदी के बजाय

इस बात से शायद ही किसी को असहमति होगी कि प्लास्टिक के बढ़ते बेलगाम इस्तेमाल ने आज समूचे पर्यावरण के सामने एक बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। इससे न केवल जल, वायु और जमीन को दीर्घकालिक नुकसान हो रहा है, बल्कि इससे उपजी मुश्किल को आम लोग रोजमर्रा की जिंदगी में भी महसूस कर रहे हैं। इसके बावजूद न तो लोगों के स्तर पर इसके प्रयोग से बचने की कोशिश होती है, न सरकार की ओर से इस पर कोई ठोस कार्ययोजना अमल में आ पाती है। हाल के वर्षों में प्लास्टिक से पर्यावरण को होने वाले व्यापक नुकसान के मद्देनजर इस पर प्रतिबंध लगाने का मुद्दा दुनिया भर में चर्चा का विषय बना है। इसी क्रम में हमारे देश में भी स्वच्छ भारत अभियान के तहत दो अक्तूबर यानी गांधी जयंती के दिन से एक बार इस्तेमाल में आने वाले प्लास्टिक पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाने की घोषणा हुई थी। लेकिन इस महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम के पीछे अच्छी मंशा होने के बावजूद यह सच है कि पाबंदी और उससे उपजी स्थितियों का आसानी से सामना करने की तैयारी अभी पूरी नहीं हो पाई थी। इसलिए फिलहाल सरकार ने प्लास्टिक के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने के लिए जन-जागरूकता फैलाने का अभियान चलाने पर जोर दिया है।

यह किसी से छिपा नहीं है कि लंबे समय से इसके नुकसान की अनदेखी के नतीजे में रोजमर्रा की आम जिंदगी में प्लास्टिक का उपयोग व्यापक स्तर पर घुल-मिल चुका है और इसकी जरूरतें पूरी करने के लिए प्लास्टिक की वस्तुएं तैयार करने का एक बड़ा बाजार खड़ा हो चुका है। ऐसे में अगर प्लास्टिक पर अचानक ही पाबंदी लगाई जाती है तो आम जनजीवन पर इसका असर पड़ने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के मोर्चे पर कई दूसरी गंभीर समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। अगर अचानक ही ऐसा प्रतिबंध लगाया जाता है तो प्लास्टिक की वस्तुएं तैयार करने के काम में लगी लगभग दस हजार औद्योगिक इकाइयां बंद हो जाएंगी और पांच लाख से ज्यादा लोग बेरोजगार हो जाएंगे। देश फिलहाल पहले ही आर्थिक मंदी और तेजी से बढ़ती बेरोजगारी की गंभीर समस्या से दो-चार है। ऐसे में पाबंदी के सवाल पर अगर जरूरत से ज्यादा सख्ती बरती जाती तो शायद स्थितियां और विकट हो जातीं। कहा जा सकता है कि मकसद में अच्छा होने के बावजूद एक बार इस्तेमाल में आने वाले प्लास्टिक को पूरी तरह प्रतिबंधित करना व्यावहारिक नहीं होगा।

जाहिर है, एक बार इस्तेमाल में आने वाले प्लास्टिक पर आम लोगों से लेकर बाजार तक जिस पैमाने पर निर्भर हो गया है, उसमें इस पर अचानक पाबंदी के बाद जटिल हालात पैदा होंगे। इसके बावजूद यह तथ्य है कि प्लास्टिक से तैयार सामानों और खासतौर पर एक बार प्रयोग में आने वाली प्लास्टिक की वस्तुओं के इस्तेमाल से होने वाले नुकसान का दायरा काफी बड़ा हो चुका है। शहरों-महानगरों के नालों के जाम होने से लेकर चारों तरफ पसरा कचरा एक पक्ष है तो इससे होने वाले वायु प्रदूषण से लेकर जमीन तक के बंजर होने का सवाल ज्यादा गंभीर है। इसलिए समय रहते कम से कम एक बार इस्तेमाल में आने वाले प्लास्टिक के सामान पर से निर्भरता खत्म करके दूसरे विकल्प नहीं निकाले गए तो इसका गंभीर दुष्परिणाम सबको भुगतना पड़ेगा। अब अगर सरकार ने एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक पर पूरी तरह पाबंदी के बजाय फिलहाल इस मसले पर जन-जागरूकता फैलाने पर जोर देने का निश्चय किया है तो अब इसे महज औपचारिकता का निर्वहन करने वाली गतिविधि तक सीमित नहीं रखना होगा। लोग इसका इस्तेमाल खुद छोड़ें और इस उद्योग में लगे लोगों को रोजगार का विकल्प मिले, इसके लिए एक बड़ी योजना बनाने और उस पर ईमानदारी से अमल की जरूरत है।

संकट का संकेत

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के संग्रह में जिस तेजी से गिरावट आ रही है, वह अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर संकट का संकेत है। पिछले कई महीनों से अर्थव्यवस्था मंदी का सामना कर रही है। संकेतक बता रहे हैं कि किसी भी क्षेत्र में हालत अच्छी नहीं है। सरकार ने हर महीने जीएसटी संग्रह का लक्ष्य एक लाख अठारह हजार करोड़ रुपए तय किया हुआ है, लेकिन देखने को यही मिल रहा है कि जीएसटी संग्रह निर्धारित लक्ष्य से काफी दूर रह जा रहा है। इस बार ज्यादा चिंता की बात यह है कि सितंबर में जीएसटी संग्रह पिछले उन्नीस महीनों में सबसे कम इनक्यानवे हजार नौ सौ सोलह करोड़ रुपए ही रहा है। अगर पिछले साल की इसी अवधि से तुलना करें तो यह 2.67 फीसद कम रहा और अगस्त, 2019 के मुकाबले तो इसमें 6.4 फीसद की कमी दर्ज की गई। पिछले दो महीनों से जीएसटी संग्रह एक लाख करोड़ रुपए से कम रहा है। जाहिर है, उद्योग और कारोबारी कर जमा नहीं कर पा रहे हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। लंबे समय से छोटे कारोबारियों से लेकर बड़े उद्योग तक मंदी की मार झेल रहे हैं। लोगों का रोजगार खत्म हो रहा है। बाजार में मांग नहीं है। नगदी संकट भी बड़ा कारण माना जा रहा है, लेकिन सरकार इसे मानने को तैयार नहीं है।

पूरे देश में एक कर प्रणाली लागू करने के मकसद से जीएसटी की व्यवस्था शुरू हुई थी। तब इसे लेकर लंबे-चौड़े दावे किए गए थे और सरकार को उम्मीद थी कि इससे उसका खजाना तेजी से भरेगा और कर चोरी करने वाले किसी भी सूरत में बच नहीं पाएंगे। इसके लिए कड़े प्रावधान भी किए गए। पर आज के हालात बता रहे हैं कि हकीकत इसके उलट है। अगर आज सरकार जीएसटी संग्रह का लक्ष्य पूरा नहीं कर पा रही है तो इसका सीधा-सा मतलब यही है कि छोटे-मझोले कारोबारी हों या बड़े उद्योग, जीएसटी भरने में सबके हाथ-पांव फूल रहे हैं। जीएसटी को जितना आसान बनाने का दावा किया गया, वह छोटे कारोबारियों के लिए उतना ही भारी पड़ा है। हर तरफ से यही सुनने को मिल रहा है कि धंधा ठप है। मांग और उत्पादन का चक्र थम गया है। ऑटोमोबाइल क्षेत्र की हालत तो इतनी खराब है कि ज्यादातर कंपनियों ने उत्पादन में भारी कटौती कर दी है। ऐसे में कैसे तो माल बने और बिके!

यह तो साफ है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में आज जो सुस्ती दिखाई पड़ रही है, उसका वैश्विक कारण कम, घरेलू कारण ज्यादा हैं। जीएसटी और नोटबंदी जैसे फैसलों ने अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंचाया। सरकार का खजाना करों से ही भरता है। लेकिन जब कर मिलने ही बंद होने लगें तो जाहिर है सरकार की चिंताएं बढ़ेंगी। सरकार को बार-बार जीएसटी संग्रह के लक्ष्य में कटौती करनी पड़ रही है। जब जीएसटी लागू किया गया था तब राज्यों को भरोसा दिया गया था कि पांच साल तक उनके राजस्व में कमी की भरपाई केंद्र करेगा। ऐसे में अगर कर राजस्व निर्धारित लक्ष्य से कम होगा तो सरकार पर उसके नुकसान की भरपाई करने का दबाव बढ़ेगा। हालांकि पिछले एक महीने में सरकार ने अर्थव्यवस्था में जान फूंकने के लिए कदम तो उठाए हैं, लेकिन इनका असर दिखने में अभी वक्त लगेगा। सरकार को लग रहा है कि त्योहारी मौसम में मांग निकलेगी और रीयल एस्टेट क्षेत्र सहित उपभोक्ता बाजार में मांग बनेगी और जीएसटी संग्रह बढ़ेगा। फिलहाल, आने वाले दिनों के लिए यही एकमात्र उम्मीद है।

कल्पमेधा

महानता अहंकार रहित होती है, तुच्छता अहंकार की सीमा पर पहुंच जाती है।
-तिरुवल्लुवर

क्षेत्रीय विवाद और पश्चिमी रणनीति

संजीव पांडेय

अगर इस्लामिक देशों के बीच आपसी लड़ाई खत्म हो गई तो अमेरिकी और रूसी रक्षा उद्योग को भारी नुकसान होगा। ईरान और सऊदी अरब हथियारों के बड़े खरीदार हैं। अगर ईरान और सऊदी अरब के बीच शांति संधि हो गई तो सऊदी अरब अमेरिकी हथियार नहीं खरीदेगा और ईरान रूसी हथियार नहीं खरीदेगा।

संयुक्त राष्ट्र महासभा के चौहत्तरवें अधिवेशन में दुनिया के तमाम नेता पहुंचे और एशियाई क्षेत्र की समस्याओं सहित कई मसलों पर चर्चा की। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ही नहीं, बल्कि तमाम एशियाई नेताओं ने एशियाई क्षेत्र से संबंधित समस्याओं और विवादों पर चिंता जताई। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की चिंता में भविष्य में ईरान से आने वाला खतरा स्पष्ट रूप से झलक रहा था। उन्होंने चीन से चल रहे व्यापार युद्ध पर भी चर्चा की और राष्ट्रवाद को अमेरिका की प्राथमिकता बताया। चीन के विदेश मंत्री ने भी अमेरिका से चल रहे व्यापार युद्ध के साथ-साथ म्यांमा की रोहिंग्या समस्या, कश्मीर विवाद और कोरियाई विवाद पर चिंता जताई। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री की चिंता भी रोहिंग्या समस्या थी। पाकिस्तानी प्रधानमंत्री के भाषण में मुख्य मुद्दा कश्मीर था। भारत के प्रधानमंत्री ने अपनी सरकार के काम और उपलब्धियों का ब्योरा दिया। अहम बात है कि एशिया से संबंधित समस्याओं को आपस में मिल बैठ कर हल करने के बजाय एशियाई देश संयुक्त राष्ट्र के फोरम पर इसकी चर्चा कर रहे थे। जबकि तमाम एशियाई समस्याओं की जड़ में एशियाई संसाधनों और भूगोल पर कब्जे की लड़ाई है। एशियाई संसाधनों और भूगोल पर कब्जे को लेकर एशियाई मुल्क आपस में ही नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि पश्चिमी देशों को हस्तक्षेप करने का मौका भी दे रहे हैं। गौर करें तो यह लड़ाई लंबे समय से चल रही है। दूसरे विश्वयुद्ध की जड़ में भी संसाधन और भौगोलिक रूट थे, जिन पर कई ताकतें कब्जा चाहती थीं।

पश्चिम और मध्य-पूर्व एशिया के इस्लामिक देशों के बीच संघर्ष ऊर्जा संसाधनों को लेकर है। लेकिन ताज्जुब की बात है कि पड़ोसी मुल्क मिल-बैठ कर आपसी विवाद को हल करने के लिए राजी नहीं हैं। म्यांमा की रोहिंग्या समस्या की जड़ में चीनी, दक्षिण कोरियाई और कुछ पश्चिमी देशों की कंपनियां हैं, जिनकी नजर म्यांमा के जंगल, रबर और अन्य संसाधनों पर है। कश्मीर की समस्या भी कहीं न कहीं इसके भौगोलिक महत्त्व को लेकर है। दिलचस्प बात है कि संयुक्त राष्ट्र महासभा में इन क्षेत्रीय विवादों पर बात करने वाले एशियाई नेता आपस में ईमानदारी से बैठ कर समस्या का हल नहीं चाहते। चीन और ईरान को छोड़ दें, तो कई एशियाई नेता अपने आप को अमेरिकी राष्ट्रपति के लेफ्टिनेंट के तौर पर पेश करने में ज्यादा गर्व महसूस करते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक में भाग लेने अमेरिका पहुंचे कई एशियाई नेताओं ने ट्रंप को नायक बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। वे अपनी समस्याओं को हल करने के लिए ट्रंप की सहायता मांग रहे। और हकीकत यही है, यही अमेरिका चाहता भी है। अमेरिकी तेल, रक्षा उद्योग के आर्थिक हित भी इससे जुड़े हैं। एशियाई विवादों में मध्यस्थता के बहाने अमेरिका का रक्षा और तेल उद्योग फलता-फूलता रहा है।

इस बार भी संयुक्त राष्ट्र महासभा का मंच आलोचना का मंच नजर आया। आलोचना के बीच ज्यादातर नेता विवादों के समाधान के लिए आशान्वित नजर आए। हालांकि सब जानते हैं कि ईरान और सुन्नी अरब देशों की लड़ाई जल्द खत्म नहीं होने वाली। अगर इस्लामिक देशों के बीच आपसी लड़ाई खत्म हो गई तो अमेरिकी रक्षा उद्योग और रूसी रक्षा उद्योग को भारी नुकसान होगा। ईरान और सऊदी अरब हथियारों के बड़े खरीदार हैं। अगर ईरान और सऊदी अरब के बीच शांति संधि हो गई तो सऊदी अरब अमेरिकी हथियार नहीं खरीदेगा और ईरान रूसी हथियार नहीं खरीदेगा। गौर करने वाली बात है कि 1940 के दशक से ही इस इलाके में तनाव है और इसके पीछे पश्चिमी देशों का दिमाग है। कभी इजराइल और इराक तो कभी ईरान को केंद्र बिंदु बना कर संघर्ष यहां होता रहा है। इसका सबसे ज्यादा लाभ अमेरिकी तेल और रक्षा उद्योग को हुआ है। खाड़ी में जैसे-जैसे तनाव बढ़ता है, तेल के दाम भी बढ़ते हैं और उसका लाभ रूस और अमेरिका की तेल और गैस कंपनियों को होता है। इसलिए इन मुल्कों की कोशिश शांति के बजाए तनाव बनाए रखने की होती है, ताकि वैश्विक बाजार में तेल की कीमतों में मंदी न आए।

हाल में ईरान ने सऊदी अरब के दो तेल केंद्रों पर हमला किया। इसके बाद वैश्विक बाजार में तेल की कीमतों में भारी उछाल आया। अरब क्षेत्र में पिछले अस्सी साल से जैसा तनाव बना हुआ है, उसी तरह से दक्षिण एशिया में भारत और पाकिस्तान, भारत और चीन के बीच भी तनाव है। भारत और पाकिस्तान चाहें तो ईमानदारी से द्विपक्षीय आधार पर आपसी विवाद को हल कर सकते हैं। लेकिन पाकिस्तान ऐसा नहीं चाहता। वह भी अमेरिका की कठपुतली बना हुआ है। अगर भारत और पाकिस्तान के बीच स्थायी शांति हो जाएगी तो इससे दुनिया के कई देशों के आर्थिक हितों का नुकसान होगा।

संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक से इतर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और ईरानी राष्ट्रपति हसन रूहानी की भी मुलाकात हुई। फिलहाल भारत ने ईरान से तेल आयात बंद कर दिया है। यही नहीं, भारत ने अमेरिकी आर्थिक प्रतिबंधों के कारण ईरान के चाबहार बंदरगार के विकास की गति भी धीमी कर दी है। जबकि भारत को अमेरिकी दबाव से बाहर निकल कर ईरान से क्षेत्रीय सहयोग तेज करना चाहिए, क्योंकि भारत का अफगानिस्तान में प्रवेश का एकमात्र रास्ता ईरान है। यह सच्चाई है कि अमेरिकी दबाव में भारत ईरान से स्थायी द्विपक्षीय संबंध विकसित करने में विफल रहा है। भारत के लिए जरूरी ईरान-पाकिस्तान-भारत गैस पाइप लाइन के विकास पर बात आगे नहीं बढ़ सकी।

अमेरिकी कूटनीति का खेल देखने वाला है। एक तरफ संयुक्त राष्ट्र महासभा में डोनाल्ड ट्रंप ने ईरान के खतरे से दुनिया को अगाह किया। इमरान खान के साथ की गई प्रेस कॉन्फ्रेंस में भी ट्रंप ने ईरानी आतंक को ज्यादा खतरनाक बताया। लेकिन तस्वीर का दूसरा पक्ष भी है। संयुक्त राष्ट्र महासभा में ईरान पर हमला करने वाले ट्रंप ने ईरान से बातचीत का रास्ता भी खोल रखा है। ट्रंप ने पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान से ईरानी नेतृत्व से बातचीत करने का आग्रह किया है, ताकि ईरान के साथ चल रहे तनाव को कम किया जा सके। इसका खुलासा खुद इमरान खान ने किया। इमरान खान के अनुसार ट्रंप ने उनसे मध्यस्थता का आग्रह किया और उन्होंने ईरानी राष्ट्रपति हसन रूहानी से बातचीत की है। खान ने यह भी खुलासा किया कि सऊदी राजकुमार मोहम्मद बिन सलमान ने भी उनसे ईरानी राष्ट्रपति से बातचीत करने को कहा है ताकि क्षेत्रीय तनाव कम हो। ट्रंप के लिए पाकिस्तान आज भी महत्त्वपूर्ण है। पाकिस्तान भौगोलिक रूप से जहां ईरान और अफगानिस्तान के नजदीक है, वहीं सुन्नी देश होने के कारण वह सऊदी अरब जैसे इस्लामिक देशों के नजदीक है।

अमेरिकी जमीन पर जाकर अपनी समस्याओं को बताने वाले एशियाई नेता गंभीरता से यह विचार करें कि संसाधनों से भरपूर होने के बावजूद एशियाई मुल्क गरीबी से क्यों जूझ रहे हैं। एशियाई मुल्कों में आखिर क्यों बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा का आभाव है? आखिर क्यों गरीबी, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान दोनों देश अच्छी हालत में नहीं हैं? मध्य एशिया और पूर्वी एशिया के देश भी संसाधन संपन्न होने के बावजूद गरीबी और बेरोजगारी से जूझ रहे हैं। दिलचस्प स्थिति यह है कि आपसी विवाद खत्म करने की स्थायी योजना एशियाई मुल्कों ने अभी तक नहीं बनाई है। परस्पर विवादों को सुलझाने के लिए ये आपस में गंभीरता से बातचीत नहीं करते। इनके विवादों की पंचायत पश्चिमी देश करते हैं। इसीलिए संयुक्त राष्ट्र महासभा में कई विवादों और समस्याओं पर लंबे समय से चर्चा चल रही है, लेकिन हल आज तक किसी का नहीं निकला है।

इंसानियत के हक में

कमल कुमार

दुनिया मेरे आगे

दुनिया के किसी भी हिस्से में जब आस्था या धर्म के नाम पर तनाव पैदा होने लगता है तो लोगों का जीवन मुश्किल में पड़ता है। जहां तक भारत का सवाल है कि तो यह एक धर्मप्राण देश है। मानव धर्म इसके मूल में है। इसलिए धर्म का एक व्यापक अर्थ है जो जीवन की क्रियाओं को समग्र रूप से संबोधित करता है। लेकिन वास्तविक स्थिति बिल्कुल अलग है। धर्म के नाम पर बहुत सारे साधु-संत और आश्रम के संचालक महात्मा कहे जाने वाले लोग आमजन को बेवकूफ बना रहे हैं। पिछले कुछ सालों के दौरान आश्रमों और बाबाओं के किस्से हम सबने पढ़े हैं। हर व्यक्ति के जीवन में दुख और निराशा किसी न किसी कारण से होती है। इस हताशा में लोग धार्मिक बाबाओं के दुश्चक्र में फंस जाते हैं।

इसके अलावा, लोगों के अपने-अपने भगवान होते हैं। वे अपनी भक्ति और सामर्थ्य से दान भी देते हैं। जल, फल-फूल या नारियल आदि अर्पित किए जाते हैं। पैसे मंदिरों की 'गुल्लक' में या यों ही भगवान के सामने रख दिए जाते हैं। कई मंदिरों की आमदनी लाखों में होती है जो आखिरकार पुजारी या पंडितों के पास जाती है। उनसे पूछने वाला कोई नहीं कि कितना पैसा आया और उसका क्या हुआ! कई प्रतिष्ठित मंदिरों में तो जमा धनराशि करोड़ों रुपए है। लेकिन इन पर न कोई सामाजिक-धार्मिक दबाव है और न ही शायद कोई कानून लागू होता है। जबकि इस पैसे का सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, स्वास्थ्य, शैक्षिक संस्थाओं पर और आम जन के सहायतार्थ उपयोग किया जाना चाहिए।

यह किसी से छिपा नहीं है कि मंदिरों के बाहर भूखे लोगों की कतारें होती हैं। जैसे-तैसे उनके खाने की व्यवस्था हो जाती है, पर कोई यह नहीं सोचता कि उन्हें सक्षम कैसे बनाया जाए। वे मनुष्य की तरह जी सकें। उनके बच्चों को अक्षर ज्ञान मिले। प्रशिक्षण देकर उन लोगों को सिलाई, कढ़ाई, बुनाई और हाथ से किए जाने वाले छोटे रोजगार दिए जा सकें, ताकि वे भी सम्मान से जी सकें। लेकिन होता यह है कि धर्म के नाम पर उनके आगे खाने का सामान या कुछ सिक्के फेंक दिए जाते हैं, वे वहीं पड़े रहते हैं। दूसरी ओर, मंदिर बड़े और भव्य बनते जाते हैं। उनमें मौजूद मूर्तियों को पहनाए जाने वाले वस्त्रों और आभूषणों की कीमत बढ़ती जाती है। मंदिर के बाहर सड़कों के किनारे फटेहाल या कंबल लपेटे लोग कड़ाके की सर्दी में ठिठुरते पड़े रहते हैं। स्कूल और अस्पताल है या नहीं या फिर किस हालत में है, इस सबकी किसी को फिक्र नहीं होती।

संत के रूप में प्रचारित बाबाओं के आश्रम हैं। आम जन भटक कर शांति की तलाश में इन आश्रमों में आ जाता है। लेकिन पिछले कुछ समय के दौरान संत कहे जाने वाले लोगों के जैसे आचरण सामने आए हैं, वह अपने आप में बहुत कुछ कह जाता है। कई बाबा तो जेल की सजा काट रहे हैं। ऐसे आश्रमों में जाने वाले कई लोग कुछ समय बाद अपना पैसा गंवा कर, आत्मविश्वास खोकर और हताश होकर आश्रमों से बाहर आते हैं। उन्हें जीने का कोई मार्ग नजर नहीं आता। इस तरह के आश्रमों में भक्ति का वितंडावाद मनुष्य को अंधेरे में धकेलता है, क्योंकि ऐसी आस्था तार्किक शक्ति को विच्छिन्न कर देती है। अलग-अलग धर्मों के दायरे में अभी भी ऐसे आश्रम हैं, जहां अंधविश्वास का राज है, भूत-प्रेत उतारे जाते हैं। इस प्रक्रिया में कोड़ों से मारा जाता है, गर्म सलाखों से दागा जाता है और यहां तक कि पशुओं की बलि तक दी जाती है। लेकिन इस पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं होती।

दूसरी ओर, कहीं धर्म के ठेकेदार तालिबान की फौज तैयार कर रहे होते हैं, जो हत्याओं और आतंक में ही अपने धर्म का प्रतिफलन देखते हैं। उन्हें पूरा यकीन होता है कि आत्मघाती हमला करने के बाद मिली मौत के बाद उन्हें स्वर्ग मिलेगा। इसी तरह, हाल ही में केरल में एक नन से पादरी ने जिस तरह बलात्कार किया, वह भी अकेला मामला नहीं है। मुश्किल यह है कि पहले तो इन धर्म के ठेकेदारों की पोल नहीं खुलती। खुल भी जाए तो बहुत मुश्किल से इनके खिलाफ कोई कानूनी कार्रवाई होती है। बल्कि आज हालत यह है कि भीड़ बन कर हत्या तक कर देने के आरोपी जेल से निकल कर आते हैं तो उनका स्वागत होता है। फिर सब वैसा ही चलता रहता है। अंतर आता है तो उन पीड़ितों के जीवन में, जो इनके विरोध में आवाज उठाते है। उनके लिए जिंदगी की राह बहुत कठिन हो जाती है। हालत यह है कि धार्मिक भावनाओं, आस्था और विश्वास का ठेस पहुंचने की दलील पर न्यायालय के फैसले तक पर सवाल उठाए जा रहे हैं। सबरीमाला में रजस्वला उम्र की स्त्रियों के प्रवेश निषेध पर अदालत का फैसला और उसका विरोध इसका ज्वलंत उदाहरण है। राजनीतिक पार्टियां भी भीड़ को अपना वोट बैंक मान कर राजनीति कर रही हैं। जबकि दुनिया के किसी भी समाज में मनुष्य और मनुष्यता प्राथमिक होने चाहिए। जहां आस्था के नाम पर अंधविश्वास हावी होगा, वहां मनुष्यता खंडित होगी।

भाषा की जगह

कुछ दिन पूर्व केंद्रीय गृहमंत्री के 'एक देश-एक भाषा' की वकालत करने से बेवजह का विवाद पैदा करने की कोशिश गई। गृहमंत्री ने कहा था कि हिंदी ही देश को एकता की डोर में बांधने और विश्व में भारत की पहचान बनाने का काम कर सकती है। उनके इस बयान पर दक्षिण के राज्यों से तीखी प्रतिक्रियाएं आने लगीं। विपक्षी दलों कांग्रेस और भाकपा ने भी इस बयान की आलोचना की। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा का मुद्दा बेहद संवेदनशील रहा है। संविधान निर्माताओं को इसका एहसास था, इसलिए उन्होंने हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया लेकिन अंग्रेजी के उपयोग का भी प्रावधान रखा। अनुच्छेद 346 और 347 में कहा गया है कि राज्य के विधानमंडल द्वारा राज्य में प्रयोग की जाने वाली किसी भी एक या अधिक भाषाओं या हिंदी को राज्य में किसी भी या सभी राजकीय उद्देश्यों से उपयोग के लिए अपना सकता है।

भारत में हिंदी की तरह अनेक भाषाए हैं जो हिंदी जैसी ही समृद्ध हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में भी बाईस भाषाओं को मान्यता दी गई है। कई भाषाओं जैसे भोजपुरी और राजस्थानी के लोग भी लगातार प्रयासरत हैं कि उनकी मातृभाषा को मान्यता मिले और उसमें भी रोजी रोजगार हो। पिछले कुछ वर्षों में अंग्रेजी को लोगों ने बढ़-चढ़ कर अपनाया है क्योंकि यह रोजगार और नई तकनीक की भाषा है। रही बात हिंदी की, तो यह लगातार संपर्क भाषा के रूप में बढ़ रही है। कोई भी राज्य अपनी मातृभाषा कभी नहीं छोड़ेगा, इससे देश का विकास भी रुकने वाला नहीं है। एक भाषा की बात करने वाले देश की तमाम प्रमुख परीक्षाओं जैसे-यूपीएससी, जेईई, नीट सबमें अंग्रेजी को ज्यादा तरजीह देते हैं। क्या यह सच में हिंदी भाषा की परवाह है? बेहतर होगा कि सियासी दल भाषा जैसे संवेदनशील मामलों से दूर रहें और इस मामले में लोगों को फैसला करने दें।

● *प्रिंस अभिषेक, छपरा, बिहार*

रोजगार का सवाल

देश में बेरोजगारी इन दिनों 45 वर्षों के चरम पर है। इसकी तुलना में विभिन्न विभागों में खाली पड़े पदों की पड़ताल के लिए एक विभाग का ही उदाहरण लिया जाए तो सारे देश की स्थिति का अंदाजा लग जाएगा। अकेली उच्च शिक्षा की बात करें तो 2017-18 के ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन की रिपोर्ट के मुताबिक देशभर में 40 केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं। इनमें प्राध्यापकों के 2476 पद स्वीकृत हैं जिनमें से 1301 खाली पड़े हैं। यानी करीब 54 प्रतिशत प्राध्यापकों की कमी है। दिल्ली विश्वविद्यालय में 59 और जेएनयू में शिक्षकों के 50 फीसद पद रिक्त हैं। यहां 199 प्राध्यापकों का काम 100 शिक्षकों से चलाया जा रहा है। अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय में 200 के बजाय 137, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 253 के बजाय 171 प्राध्यापकों से ही काम चलाया जा रहा है।

मार्च 2018 की रिपोर्ट के मुताबिक 23 आईआईटी में 2806 पद खाली पड़े हैं। सबसे ज्यादा 552 पद आईआईटी खडगपुर में खाली हैं। देश के आईआईटी में शिक्षकों की कमी पर सिलसिलेवार नजर डालें तो आईआईटी गोवा में 62, आईआईटी धारवाड में 47, आईआईटी खडगपुर में 46,आईआईटी कानपुर में 37, आईआईटी दिल्ली में 29 तथा आईआईटी मुंबई में 27 प्रतिशत शिक्षकों की कमी है। अगर सरकार देश के विभिन्न विभागों में रिक्त पड़े पदों को भरने का अभियान चलाए तो न सिर्फ बेरोजगारों की संख्या में आएगी बल्कि यह भी साबित हो जाएगा कि कमी युवाओं के कौशल में नहीं बल्कि उन्हें उनकी योग्यता के अनुरूप रोजगार उपलब्ध कराने के प्रयासों में है।

● *देवेंद्र जोशी, उज्जैन*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

सिद्धांत के बिना

गांधीजी ने सात सामाजिक पाप गिनाए हैं। बिना सिद्धांत के राजनीति करना, नैतिकता के बिना वाणिज्य-व्यापार करना, मानवता के बिना विज्ञान का उपयोग करना, त्याग के बिना धर्म का पालन करना, चरित्र के बिना ज्ञान बघारना, अंतःकरण की शुद्धि के बिना सुख की कल्पना करना और परिश्रम किए बिना भोजन व धनार्जन करना। इन सात बातों में से आज सबसे कम पालन किसी का हो रहा है तो वह है सिद्धांत के बिना राजनीति। पंचायत स्तर से लेकर संसद तक, अधिकारी से लेकर वैधानिक कार्यों तक। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, विकास, सुरक्षा, पर्यावरण आदि सभी क्षेत्रों में ज्यादातर नेता अपने स्वार्थ की राजनीति कर रहे हैं। झूठ को सच में बदल कर लोगों को गुमराह करना इनकी फितरत में है। गांधीजी की 150वीं जयंती पर भारत को प्लास्टिक मुक्त करने की बातें तो खूब की गईं मगर एक भी प्लास्टिक कंपनी का नाम सामने नहीं आया जिसे बंद करने की बात कही गई हो। सिर्फ लोगों से कहा जा रहा है कि आप प्लास्टिक का इस्तेमाल नहीं करें। हमारा मानना है कि प्लास्टिक बनाने वाली कंपनियों को बंद करा दीजिए। जिस तरह अपराध रोकने के लिए कानून बनाया गया है उसी तरह जल, जमीन, पर्यावरण की सुरक्षा के लिए भी कानून बना कर प्लास्टिक निर्माण पर प्रतिबंध लगाना जरूरी है। लेकिन यह काम करेगा कौन?

● *जय तिवारी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश*

शरणार्थी बनाम घुसपैठिए

केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने राष्ट्रीय नागरिक पंजीकरण (एनआरसी) पर सरकार के संकल्प को दोहराते हुए मंगलवार को कोलकाता के एक कार्यक्रम में कहा कि 'देश से किसी शरणार्थी को जाने नहीं देंगे और घुसपैठिए रहने नहीं देंगे।' दरअसल, शरणार्थी और घुसपैठिए में बहुत अंतर होता है। जो शरणार्थी भारत में बाहर से आए हैं उनसे देश की संप्रभुता और एकता को कोई खतरा नहीं होता, जबकि अवैध घुसपैठियों के कारण देश की शांति भंग होती है। इनके कारण अपराधों में वृद्धि हुई है, भूमि व संसाधनों पर अवैध कब्जे हुए हैं, जिसे रोका जाना चाहिए।

असम व पश्चिम बंगाल दोनों ही प्रदेशों में अवैध घुसपैठियों के कारण स्थायी निवासियों को बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भूमि, नौकरी, व्यवसाय के साथ-साथ धार्मिक मामलों में भी घुसपैठियों के हस्तक्षेप के कारण आएदिन तनाव की स्थिति बनती है। कई बार तो नौबत मारपीट और दंगे तक पहुंच जाती है। स्थानीय चुनावों में भी इन अवैध घुसपैठियों की हिंसा फैलाने में संदिग्ध भूमिका थी। केंद्र सरकार को इसे देखते हुए एनआरसी का काम बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है।

● *मंगलेश सोनी, मनावर, धार, मध्यप्रदेश*